HindiTech
A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

विज्ञान की भाषा के रूप में संस्कृत- मार्कण्डेय काटजू

(प्रस्तुत सामग्री कई उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश एवं प्रेस परिषद के अध्यक्ष जस्टिस मार्कण्डेय काटजू द्वारा 13 नवंबर, 2009 को भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगलूरू में दिया गया व्याख्यान था, जिसे बाद में उनके ब्लॉग पर अँग्रेजी में पोस्ट किया गया था। हम उनकी 23 मार्च, 2013 को ई-मेल के माध्यम से प्राप्त सहमति के बाद इसका ***राकेश कुमार मिश्र*** *द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद यहाँ व्यापक पाठकों के लिए उपलब्ध करवा रहे हैं।- संपादक)*

मित्रो!

मेरे लिए यह अत्यंत सम्मान की बात है कि आपने मुझे 'भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलुरु में बोलने के लिए आमंत्रित किया है। जो विश्व भर में वैज्ञानिक क्रिया-कलापों का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र है। आपके संस्थान ने अंतरराष्ट्रीय स्तर के कई महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक दिए है। आज बोलने के लिए मैंने जिस विषय का चुनाव किया है और वह वो है- "विज्ञान की भाषा के रूप में संस्कृत"। इस विषय का चुनाव मैंने दो कारणों से किया है-

1. आप सभी वैज्ञानिक हैं, अतः स्वाभाविक रूप से आप अपने वैज्ञानिक विरासत को जानना चाहेंगे और साथ ही अपने पूर्वजों के महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों के बारे में भी जानना चाहेगें।
2. आज भारत कई बड़ी समस्याओं का सामना कर रहा है और मेरी राय में ये सिर्फ विज्ञान के द्वारा ही सुलझाई जा सकती है। अगर हमें विकास करना है, तो हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण को देश के कोने-कोने तक पहुँचाना होगा। यहाँ विज्ञान से मेरा मतलब भौतिकी, रसायनविज्ञान और जीवनविज्ञान से नहीं है, बल्कि पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टिकोण से है। हमें लोगों को तार्किक व प्रश्नाकूल बनाना होगा और अंधविश्वासों व खोखली रीती-रिवाजों को खत्म करना होगा। भारतीय संस्कृति के आधार में संस्कृत भाषा है। संस्कृत भाषा के बारें में एक बड़ी भ्रांति यह है कि यह केवल मंदिरों या धार्मिक आयोजनों में मंत्रोच्चार के लिए है। जबकि यह संपूर्ण संस्कृत साहित्य के 5 प्रतिशत से

भी कम है। संस्कृत साहित्य के 95 प्रतिशत से अधिक हिस्से का धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। जबकि इसका संबंध दर्शन, न्याय, विज्ञान, साहित्य व्याकरण, ध्वनि-विज्ञान निर्वचन आदि से है।

संस्कृत स्वतंत्र चिंतकों कि भाषा थी, जिन्होंने अपने समय में कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न खड़े किए और जिन्होंने विभिन्न विषयों पर विभिन्न विचार व्यक्त किए। वास्तव में प्राचीन भारत में संस्कृत हमारे वैज्ञानिकों की भाषा थी। निःसंदेह आज हम विज्ञान के क्षेत्र में दूसरे देशों कि तुलना में पीछे है और लेकिन एक समय था, जब भारत पूरे विश्वभर में अग्रणी था। "संस्कृत" शब्द का अर्थ होता है- पूर्ण, संपूर्ण, शुद्ध और परिष्कृत। इसे "देववाणी" (देवताओं की भाषा) भी कहा गया है। संस्कृत हमारे दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, गणितज्ञों, कवियों, नाटककारों, व्याकरणाचार्यों आदि की भाषा थी। व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनी और पतंजलि (अष्टाध्यायी और महाभाष्य के लेखक) के समतुल्य पूरे विश्वभर में कोई दूसरा नहीं है। खगोलशास्त्र और गणित के क्षेत्र में आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कर के कार्यों ने मानव जगत को नवीन मार्ग दिखवाया। वहीं औषधि के क्षेत्र में चरक और सुश्रुत ने महत्त्वपूर्ण कार्य किये। दर्शन के क्षेत्र में गौतम (न्याय व्यवस्था के जन्मदाता) शंकराचार्य बृहस्पति आदि ने पूरे विश्वभर में विस्तृत दार्शनिक व्यवस्था को प्रतिपादित किया है। साहित्य में संस्कृत का योगदान सबसे महत्त्वपूर्ण है। कालिदास का लेखन (शकुंतला, मघदूत आदि) भवभूति (मालती माधव, उत्तर रामचरित आदि) और वाल्मीकि, व्यास आदि के महाकाव्य, जिन्हें पूरे विश्वभर में जाना जाता है। अपने इस बातचीत मे मैं संस्कृत के साहित्यक पक्ष कि चर्चा करूंगा, जो विज्ञान से जुड़ा हुआ है। आगे बढ़ने से पहले, इस बातचीत के दौरान मैं विषय से विषयांतर करना चाहूँगा। असल में इस पूरी बातचीत के दौरान मैं कई विषयांतर लूँगा और शायद शुरू में आपको लगे कि इसका विषय से कोई संबंध नहीं है, लेकिन अंत में आप पाएंगे कि विषय से इसका गहरा संबंध है। पहला विषयांतर ये कि – भारत क्या है। हालाँकि हम भारतीय हैं अधिकतर लोग अपने देश के बारे में नहीं जानते हैं फिर भी मैं कोशिश करता हूँ।

भारत मुख्य रूप से अप्रवासियों का देश

हालाँकि उत्तर अमेरिका (यू.एस.ए. और कनाड़ा) नवीन अप्रवासियों का देश है और जहाँ पिछले 10 हजार सालों में लोग आए है। भारत में रहने वाले लगभग 95 प्रतिशत लोग अप्रवासियों के वंशज है और जो मुख्य रूप से उत्तर-पश्चिम से आए थे और कुछ उत्तर-पूर्व से। यह हमारे देश को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण बिंदु है। लोग असुरक्षित जगहों से सुरक्षित जगहों की ओर पलायन करते हैं, ये बहुत स्वाभाविक है। क्योंकि हर आदमी आरामदायक स्थिति में रहना चाहता है। भारत में आधुनिक उद्योगों के आने से पहले यहाँ चारों तरफ खेतिहर समाज था और भारत इन सबके लिए स्वर्ग की तरह था, क्योंकि खेती के लिए जरूरी सारी आवश्यकताएँ यहाँ थीं- समतल जमीन, उपजाऊ मिट्टी, सिंचाई के लिए पर्याप्त जल, समजलवायु आदि। अफगानिस्तान का उदाहरण दिया जा सकता है और जहाँ कठिन परिस्थितियाँ हैं, जहाँ के पहाड़ साल में कई महीनें वर्फ से ढ़के रहते हैं। जहाँ कोई एक फसल भी नहीं उगा सकता। इसलिए लगभग सारे अप्रवासी व हमलावर भारत में बाहर से आए। तभी उर्दू के महान शायर फिराक गोरखपुरी ने लिखा भी है-

“सर जमीने-ए-हिंद पर एक अवाम-ए-आलम कि

फिराक काफिले गुजरते गए हिंदुस्ताँ बनता गया”

अर्थात् इस हिंदुस्तान कि जमीन से लोगों के कई काफिलें गुजरे है और धीरे-धीरे भारत आकार लेता रहा। अब सवाल यह उठता है कि भारत के मूलनिवासी कौन है? एक समय में विश्वास किया जाता था कि द्रविड़ भारत के मूल निवासी हैं, हालाँकि, सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि भारत के वास्तविक मूलनिवासी पूर्व-द्रविड़ वंशज थे, जिनके बंशज मुण्डा भाषा बोलने वाले थे। जो वर्तमान में छोटा नागपुर, छत्तीसगढ़, ओडिसा, पश्चिम बंगाल आदि नवीन क्षेत्रों में रहते हैं। भारत के संपूर्ण जनसंख्या में इनकी जनसंख्या मात्र 5 से 7 प्रतिशत है। बाकी बचे 95 प्रतिशत लोग भारत में आज अप्रवासियों के पूर्वज हैं और जो मुख्य रूप से उत्तर-पश्चिम से आए थे। यह भी माना जाता है कि द्रविड़ भी बाहर से आए थे। संभवतः वर्तमान पाकिस्तान और अफगानिस्तान के इलाकों से। हम भारत की तुलना चीन से कर सकते हैं, जो जनसंख्या और क्षेत्रफल दोनों ही मामलों में भारत से बड़ा है। चीन की जनसंख्या 1.3 अरब है और वहीं हमारी जनसंख्या 1.15 अरब है। चीनियों में मंगोलों वाले लक्षण देखें जा सकते हैं, जिनकी अपनी एक

सामान्य लिखित लिपि है। 95 प्रतिशत चीनी एक खास समूह से जुड़े हैं, जिन्हें ह्वांन चीनी कहते है। हालाँकि, चीनियों में व्यापक रूप से एक रूपता देखी जा सकती है। वहीं, दूसरी तरफ जैसा कि पहले कहा जा चुका है और भारत में बड़े तौर पर विविधता है और इसका सबसे बड़ा कारण पिछले हजारों सालों में बड़े पैमाने पर हुए पलायन व हमले हैं। विभिन्न अप्रवासी जो भारत में आए, वे अपने साथ विभिन्न संस्कृति, भाषा, धर्म आदि लेकर आए। जो भारत में बड़े विविधता के कारण बने। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भारत कृषि के लिए हर तरह से उपयुक्त था। सिर्फ कृषक समाज में ही कोई संस्कृति, कला और विज्ञान पनप सकता है। मनुष्य जब तक शिकारी था, तब तक ये संभव नहीं हो पाया। क्योंकि मनुष्य अपना पूरा समय भोजन के लिए शिकार करते हुए गुजार देता था। जीने के लिए संघर्षपूर्ण बाध्यता ने उसे सुबह से शाम तक इसी काम में व्यस्त रखा, ऐसे में उसके पास बिल्कुल समय नहीं था कि कुछ और सोच सके। ऐसे में कृषक जीवन में ही उसके पास कुछ सोचने का समय मिल पाता था। प्राचीन भारत में ढ़ेर सारे बौद्धिक क्रियाकलाप होते थे। हम हमारे साहित्य में सैकड़ों शास्त्रार्थ के संदर्भ देखते हैं। जिसमें एक बड़ी सभा में बौद्धिक-चिंतक विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श करते थे। संस्कृत में हजारों किताबें लिखी गई थीं, लेकिन इतने लंबे समय बाद मात्र 10 प्रतिशत किताबें ही बची है। मेरे विषयांतरण का कारण यह बताना था कि यह भारत की भौगालिक स्थितियाँ ही थी, जिसने हमारे पूर्वजों को विज्ञान और संस्कृत के क्षेत्र में ढ़ेरों प्रगति करने के योग्य बनाया। गणित, खगोलशास्त्र, औषधि अभियाँत्रिकी आदि क्षेत्रों में हम पूर्वजों के विशिष्ट उपलब्धियों पर चर्चा करने से पहले यहाँ प्राचीन भारत में संस्कृत का विज्ञान के विकास मे दो महत्त्वपूर्ण योगदान की चर्चा करना जरूरी है-

1. इस भाषा के जन्मदाता व्याकरण आचार्य पाणिनी माने जाते हैं, जिन्होंने संस्कृत को इतना सक्षम बनाया कि इसमें तकनीकी विचारों को पूरे विशुद्धता, तार्किकता और सुस्पष्टता के साथ व्यक्त किया जा सके। विज्ञान में परिशुद्धता कि आवश्यकता होती हैं साथ ही विज्ञान को एक लिखित भाषा कि जरूरत होती है, जिसमें विचारों को पूरी स्पष्टता और तार्किकता के साथ व्यक्त किया जा सके।

2. असल में संस्कृत सिर्फ एक भाषा नहीं है, बल्कि संस्कृत के कई रूप हैं। वर्तमान में जो संस्कृत प्रचलित है, वह पाणिनी संस्कृत है। जो शास्त्रीय संस्कृत के नाम से भी जाना जाता है और जिसे आज हमारे स्कूलों और विश्वविद्यालयों में पढाया जाता है। साथ ही यह नई भाषा है, जिसमें हमारे वैज्ञानिकों ने महत्त्वपूर्ण लेखन किया है।

ऋगवेद का लेखन प्राचीन संस्कृत में हुआ है, जिसका लेखन 2000 ई. पू. के आस-पास हुआ हैं। इसका लेखन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की मौखिक परंपरा पर आधारित है। ऋगवेद हिंदू समाज का सबसे पवित्र ग्रंथ है। जिसमें 1028 ऋचाएँ हैं, जो विभिन्न प्राकृतिक देवताओं को संबोधित किए गए हैं, जैसे- इंद्र, अग्नि, सूर्य, सोम, वरूण आदि।

समय के साथ भाषा भी बदलती है। बिना अच्छे स्पष्टीकरण के आज शेक्सपीयर के नाटकों को समझना कठिन है, क्योंकि शेक्सपीयर ने इनका लेखन सोलहवीं सदी में किया था और तब से आज तक अँग्रेजी भाषा बहुत बदल गई है। शेक्सपीयर के लेखन की अनेक अभिव्यक्तियाँ आज उतने प्रचलन में नहीं है, जितना शेक्सपियर के समय थी।

संस्कृत में बदलाव 2000 ई. पू. से ही शुरू हो गया था। जब ऋगवेद का लेखन 500 ई.पू. के आस-पास हुआ। पाँचवीं सदी ई.पू. में महान बौद्धिक पाणिनी, जो विश्वभर में अब तक के सबसे बड़े व्याकरण आचार्य हैं, इसी समय एक पुस्तक लिखी थी “अष्टाध्यायी”। इस पुस्तक में पाणिनी ने संस्कृत के निश्चित नियमों का उल्लेख किया है। पाणिनी ने जो सबसे महत्त्वपूर्ण काम किया, वह यह था कि उन्होंने अपने समय में प्रचलित संस्कृत भाषा का गहराई से अध्ययन किया और उसके बाद उसे परिष्कृत, परिशुद्ध और व्यवस्थित किया, जिसके कारण वह एक तार्किक, परिशुद्ध और परिष्कृत भाषा बन सकी। इस तरह से पाणिनी ने संस्कृत को एक ऐसा विकसित व सशक्त वाहक बना दिया, जिसमें तकनीकी विचारों को अत्यंत शुद्धता व स्पष्टता के साथ व्यक्त किया जा सके। ‘अष्टाध्यायी’ के गहराई में मैं नहीं जा रहा हूँ, लेकिन इस संबंध में यहाँ एक छोटा उदाहरण दिया जा सकता है-

अँग्रेजी के 'A' से 'Z' तक के वर्णों को किसी तार्किक आधार पर व्यवस्थित नहीं किया गया है और इसके पीछे कोई विशेष कारण नहीं है कि F, G से पहले क्यों आता है या P, Q से पहले क्यों आता है। अँग्रेजी के वर्णों को यादृच्छता के आधार पर व्यवस्थित किया गया है। जबकि दूसरी तरफ पाणिनी ने अपने पहले 14 सूत्रों में संस्कृत भाषा को अत्यंत वैज्ञानिक व तार्किक आधार पर व्यवस्थित किया है। जिसके क्रमबद्धता में ध्वनियों का गहरा अवलोकन किया गया है।

उदाहरण के तौर पर स्वर- जैसे- अ, आ, अ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ को मुख (मुँह) के आकार के आधार पर व्यवस्थित किया गया है। जैसे- अ और आ का उच्चारण गले से इ और ई का उच्चारण तालु से व उ और ऊ का उच्चरण होठों से होता है। ठीक इसी तरह से व्यंजनों को भी वैज्ञानिक तरीके से जमाया गया है। क वर्ग का उच्चारण गले से च वर्ग का उच्चारण तालु से त वर्ग का उच्चारण दाँतों और प वर्ग का उच्चारण होठों से होता है। मैं पूरी निर्भीकता के साथ कहना चाहता हूँ कि संस्कृत के अलावा विश्व के किसी और भाषा के वर्णों को इस तरह से तार्किक व वैज्ञानिक रूप से नहीं जमाया गया है।

इस तरह से हम देखते हैं कि हमारे पूर्वज छोटे-छोटे मुद्दों को कितनी गंभीरता से लेते थे। साथ ही हम यह महसूस कर सकते हैं कि वे बड़े मुद्दों पर कितनी गहराई से सोचते रहे होंगें। पाणिनी संस्कृत को शास्त्रीय संस्कृत या परंपरागत संस्कृत भी कहा जाता है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, वैदिक संस्कृत के संदर्भ में कि यह वही भाषा है, जिसमें हमारे वेद लिखे गए है। आगे मैं वेद शब्द के अर्थ पर बात करना चाहता हूँ। यह हमें पाणिनी के काम को समझने में मदद करेगा।

वेदों (जिन्हें श्रुति भी कहा जाता है) को चार भागों में बाँटा गया है-

1. **संहिता (या मंत्र)** – इनमें चारों वेदों (ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद और अर्थववेद) को शामिल किया गया है। 'समहिता' का अर्थ होता है- संग्रह। पहले भी कहा जा चुका है- ऋगवेद प्रार्थनाओं का संग्रह है। सबसे प्रमुख वेद ऋगवेद है, जो छंदों में लिखा गया है, जिन्हें 'ऋचा' कहते हैं। सामवेद संगीत पर आधारित है। यजुर्वेद की दो तिहाई ऋचाएँ ऋगवेद से ली गई है।

2. **ब्राह्मण** – जो गद्य में लिखे गए है, जिनमें विभिन्न यज्ञों को करने के तरीके दिए गए है। हर ब्राह्मण का संबंध कुछ संहिताओं से है।
3. **अरण्यक** – ये असल में “अरण्य वेद” हैं। जो बौद्धिक व दार्शनिक विचारों का खजाना है।
4. **उपनिषद** – ये हमारे दार्शनिक विचारों के विकास से जुड़े हैं।

उल्लिखित सारे जिन्हें संहिता, ब्राह्मण, अरण्यक, उपनिषद के नाम से जाना जाता है और उन्हे सामूहिक रूप से वेद या श्रुति कहा जाता है। ब्राह्मण, जो संहिताओं के बाद लिखे गए है और उनकी भाषा संहिताओं से कुछ भिन्न भी है। जिस समय ये लिखे गए उस समय संस्कृत का रूप दूसरा था। इसी प्रकार अरण्यक, ब्राह्मण से थोड़ी भिन्न है। वेदों का अंतिम हिस्सा उपनिषेद है और इनकी भाषा संस्कृत के शुरूआती वेदों से एकदम अलग है। उपनिषदों के लेखन में प्रयुक्त किया गया संस्कृत पाणिनी संस्कृत के बहुत करीब है। पाणिनी के अष्टाध्यायी के लेखन के बाद से गैर-वैदिक संस्कृत साहित्य का लेखन भी पाणिनी व्याकरण के अनुसार होने लगा। वैदिक साहित्य संपूर्ण संस्कृत साहित्य का 1 प्रतिशत ही है। संस्कृत का 99 प्रतिशत साहित्य गैर-वैदिक संस्कृत साहित्य है। महाभारत के कुछ हिस्सों का लेखन पाणिनी से पहले हुआ है, क्योंकि पाणिनी ने अष्टाध्यायी में महाभारत का उल्लेख किया है। बाद में महाभारत के इन हिस्सों को पाणिनी व्याकरण के अनुसार बदल दिया गया। अब संस्कृत के गैर-वैदिक साहित्य का लेखन पाणिनी व्याकरण के अनुसार हो रहा है। कुछ शब्दों व अभिव्यक्तियों को छोड़कर, जिन्हें अपभ्रंश कहा जाता है और जो कुछ कारणों से पाणिनी व्यवस्था में फिट नहीं बैठते। यहाँ तक कि यह स्वीकार्य नहीं है कि ऋगवेद की भाषा बदली जाए और इसे पाणिनी व्याकरण के अनुसार किया जाय। पाणिनी या कोई भी ऋगवेद को नहीं छू सकता था, क्योंकि यह सबसे पवित्र ग्रंथ है, जिसके भाषा को बदलना स्वीकार्य नहीं है। 2000 ई.पू. के आस-पास निर्माण के बावजूद ऋगवेद का लेखन ठीक से हुआ कहा नहीं जा सकता, क्योंकि इसका लेखन गुरू-शिष्यों के मौखिक परंपरा के आधार पर हुआ है। वैदिक साहित्य का निर्माण पाणिनी व्याकरण के अनुसार नहीं हुआ है। जबकि गैर-वैदिक संस्कृत साहित्य का निर्माण पाणिनी व्याकरण के अनुसार हुआ है, जिसमें हमारे सारे बौद्धिकों ने अपना वैज्ञानिक कार्य किया है। इसकी एकरूपता और

व्यवस्थित रूप ने बड़े बौद्धिकों को अपनी बात आसानी से व्यक्ति करने का मौका दिया और यह विज्ञान के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण आवश्यकता थी।

आगे मैं ये कहना चाहता हूँ कि मौखिक भाषा बहुत महत्त्वपूर्ण है, लेकिन मौखिक बोलियाँ हर 50 से 100 किलोमीटर पर बदल जाती हैं, जिनमें कोई एकरूपता देखने को नहीं मिलती। परंपरागत संस्कृत जैसी लिखित भाषा, जिसमें उस समय के बौद्धिक अपनी बात दूसरों से कह सकते थे। यह विज्ञान के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ, जो पाणिनी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

प्राचीन भारत में विज्ञान के विकास के बाद मैं अब भरतीय दर्शन पर बात करना चाहता हूँ। सामान्यतः माना जाता है कि परंपरागत भारतीय दर्शन के छः वर्ग और गैर-परंपरागत भारतीय दर्शन के तीन स्कूल है। छः परंपरागत वर्ग है- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग वर्ग, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा। गैर-परंपरागत वर्ग है: बौद्ध धर्म, जैनधर्म और चार्वाक। परंपरागत भारतीय दर्शन का शष्टदर्शन के नाम से भी जाना जाता है। शष्टदर्शन पर संक्षिप्त चर्चा इस प्रकार से है-

1. **न्याय-** यह एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रतिपादित करता है इसके अनुसार बिना तर्क व अनुभव के कुछ भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। जिसे बाद में न्याय वर्ग के दार्शनिकों ने खंडित कर दिया।
2. **वैशेषिक-** इसमें परमाणु सिद्धांत को प्रस्तुत किया गया है।
3. **सांख्य-** यह न्याय-वैशेषिक व्यवस्था के सत्तामीमांसा को प्रस्तुत करता है। सांख्य दर्शन पर बहुत ही कम साहित्य बचा है और इसके मूलभूत सिद्धांतों पर विवाद भी है। कुछ कहते हैं कि यह द्वयर्थी है, जबकि कुछ इसे एकार्थी मानते हैं इसके दो मुख्य प्रतीक है- एक- पुरूष, दूसरी-प्रकृति।
4. **योग-** यह शारीरिक व मानसिक अवस्था को प्रस्तुत करता है।
5. **पूर्व मीमांसा** (जिसे संक्षिप्त में मीमांसा कहा जाता है) – यह आध्यात्मिक व सांसारिक लाभ के लिए योग पर जोड़ देता है।
6. **उत्तर मीमांसा** – यह ब्राह्मण पर जोड़ देता है।

ऐसा कहा जाता है कि परंपरागत और गैर-परंपरागत दर्शन व्यवस्था इस मामलें में एक-दूसरे से अलग हैं कि परंपरागत दर्शन व्यवस्था वेदों के आधिपत्य को स्वीकार करती है, जबकि गैर-परंपरागत दर्शन व्यवस्था वेदों के आधिपत्य को स्वीकार नहीं करती। इन सारी दर्शन व्यवस्थाओं पर विस्तृत चर्चा करने के बजाए में मुख्य रूप से न्याय और वैशेषिक पर चर्चा करना चाहता हूँ, जो एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं न्याय, दर्शन के अनुसार कुछ भी तर्क और अनुभव के बिना स्वीकार्य नहीं है और यह स्पष्ट रूप से एक वैज्ञानिक सोच है। वहीं वैशेषिक परमाणु सिद्धांत को प्रस्तुत करता है, जो प्राचीन भारत का भौतिकी था। शुरू में न्याय और वैशेषिक को एक ही व्यवस्था के रूप में देखा जाता था, लेकिन भौतिकी सभी विज्ञानों के आधार में था। आगे जाकर वैशेषिक न्याय दर्शन व्यवस्था से अलग हो गया और एक स्वतंत्र दर्शन व्यवस्था के रूप में स्थापित हुआ। आगे कहा जा सकता है कि सांख्य दर्शन व्यवस्था, न्याय और वैशेषिक व्यवस्था से पुरानी है, लेकिन इस संदर्भ में बहुत कम साहित्य ही बचा है, हालाँकि कहा जा सकता है कि सांख्य दर्शन ने न्याय-वैशेषिक वैज्ञानिक दर्शन के लिए एक भौतिक आधार का काम किया था। न्याय-वैशेषिक व्यवस्था को दो भागों में बाँटा गया है-

1. यथार्थवाद
2. द्वैतवाद (या बहुलवाद)।

यह शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत का विरोधी है, जो एकत्ववादी है और जिसके अनुसार संपूर्ण संसार को एक भ्रम माना है। 'अनेकवाद' और 'एकत्ववाद' एक-दूसरे के विरोधी हैं। 'एकत्व' का अर्थ है- संपूर्ण संसार में एक ही तत्त्व, एक ही सत्ता है। शंकराचार्य का दर्शन भी यही कहता है कि – संपूर्ण संसार में एक ही सत्ता है। इस ब्रह्माण्ड की चीजें- टेबल, ग्लास, पेन, कमरा आदि असल में ये सब एक ही हैं। इनका अलग दिखना एक भ्रम की स्थिति है।

जबकि दूसरी तरफ न्याय-वैशेषिक दर्शन व्यवस्था के अनुसार इस संसार में कई वास्तविक सत्ताएँ या तत्त्व हैं। यह संसार किसी एक सता के कारण नहीं चल रहा, बल्कि उन तमाम विभिन्न तत्त्वों के संयोजन से चल रहा है। जैसे- टेबल, किताब, कमरा, मानव आदि। अतः न्याय व्यवस्था बहुलवादी है, न कि एकत्ववादी।

आगे मैं भारतीय दर्शन के बारे में कुछ और भी बताना चाहता हूँ। भारतीय दर्शन की दो प्रमुख शाखाएँ हैः- **सत्तामीमांसा और ज्ञान-मीमांसा।** सत्तामीमांसा अस्तित्व का अध्ययन है। दूसरे शब्दों में कहा जाए, तो सत्तामीमांसा इन प्रश्नों का उत्तर खोजता है कि असल में किसका अस्तितत्व है? क्या ईश्वर का अस्तित्व है? क्या संसार का अस्तित्व है? या यह सिर्फ माया है? वास्तविक क्या है? ज्ञानमीमांसा में ज्ञानस्रोतों का अध्ययन किया जाता है। जैसे- सामने जो वस्तु है उसका अस्तित्व क्यों है? यहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान की चर्चा जरूरी है। प्रत्यक्ष ज्ञान वह ज्ञान है, जो हम अपने पाँच ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त करते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण को प्रधान प्रमाण भी कहते हैं। यह सभी ज्ञान स्रोतों का आधार भी हैं। हालाँकि दूसरे प्रमाण भी हैं, जैसे- अनुमान, शब्द आदि। अतः ढ़ेरों वैज्ञानिक जानकारियाँ हम तक अनुमान-प्रमाण से पहुँचती है, जैसे रैदरफोर्ड ने अपनी आँखों से परमाणु को नहीं देखा था, लेकिन बिखरे किरणों के अध्ययन व अपने अनुमान-प्रमाण के द्वारा वह इस निर्णय पर पहुँचा कि धनात्मक अणुओं के चारों ओर ऋणात्मक अणु चक्कर लगाते हैं। इसी तरह से हम ब्लैक होल को भी अपने प्रत्यक्ष आँखों से नहीं देख सकते, लेकिन हम इनके अस्तित्व को कुछ खगोल पिंडों की गतिशीलता से जान सकते हैं।

ज्ञानमीमांसा का तीसरा प्रमाण है – शब्द-प्रमाण। जो किसी विशेषज्ञ या व्यक्ति का किसी विशिष्ट क्षेत्र में दिया गया सिद्धांत होता है। हम ऐसे कथनों या सिद्धांतों को सही मानकर स्वीकार भी कर लेते है, जबकि इसे समझने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं होता, क्योंकि सिद्धांत देने वाला अपने विषय का विशेषज्ञ होता है। जैसे **E=MC2** को हम स्वीकार कर लेते हैं। इसलिए भी क्योंकि आईन्सटीन का सैद्धांतिक भौतिकी में बड़ा नाम था, जबकि हम यह समझने में असमर्थ होते हैं कि वे इस समीकरण तक कैसे पहुँचे और इसे समझने के लिए हमें गणित व भौतिकी की गहरी जानकारी चाहिए, जो हमारे पास नहीं होती। ठीक इसी तरह, हम अपने डॉक्टर द्वारा बताए रोग को मान लेते हैं, क्योंकि वह विशेषज्ञ होता है। जैसे कि पहले ही कहा जा चुका है कि न्याय दर्शन वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है और यह प्रत्यक्ष प्रमाण पर विशेष जोड़ देता है। यह स्थिति विज्ञान के साथ भी है, क्योंकि विज्ञान विस्तृत रूप से अवलोकन प्रयोग और तार्किक अवयवों पर आधारित है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा हमेशा ही सही ज्ञान मिले, यह जरूरी नहीं। जैसे कि हम देखते हैं कि सुबह सूरज पूरब से निकलता है और दिन के मध्य में ठीक

ऊपर होता है और शाम को पश्चिम में अस्त होता है। अगर हम प्रत्यक्ष प्रमाण का उपयोग करें, तो पाएंगे कि समय पृथ्वी के चारों ओर घूम रहा है, जैसा कि महान गणितज्ञ और खगोलशास्त्री आर्यभट्ट ने आर्यभट्टीय में लिखा है। ठीक इसी तरह का दृश्य हमारे मन में उभरता है, जब हम यह सोचते हैं कि पृथ्वी अपने ध्रुव पर घूम रही हैं। दूसरे शब्दों में कहें, तो अगर पृथ्वी अपने ध्रुव पर घूम रही है, तो ये मानना होगा कि सूर्य पूर्व से उगता है और पश्चिम में डूबता है। ऐसे में हमें प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ कारण के बारें में भी सोचना होगा, क्योंकि सिर्फ इसके द्वारा हम वास्तविक ज्ञान तक नहीं पहुँच सकते। अतः न्याय दर्शन ने प्राचीन भारत में विज्ञान को बहुत प्रोत्साहित व संवर्धित किया था। यहाँ इसका उल्लेख करना जरूरी है कि न्याय दर्शन षष्ट दर्शनों में से एक है। यह छः परंपरागत भारतीय दर्शन में से एक हैं। चाणकि की तरह यह गैर-परंपरागत दर्शन व्यवस्था नहीं है। हालाँकि उस समय के लोगों द्वारा परंपरागत दर्शन पर भरोसा होने के बावजूद उस दौर के लोगों ने अपने समय के वैज्ञानिकों को उत्पीड़ित नहीं किया। जबकि दूसरी तरफ यूरोप के कुछ वैज्ञानिकों को जैसे- गैलेलियों को बाईबिल का खंडन करने पर चर्च द्वारा प्रताणित किया गया। प्राचीन भारत में हर जगह पर विमर्श या शास्त्रार्थ होते थे, जिनमें मुक्त रूप से नए विचारों पर चर्चा होती थी। जिसमें एक बड़ी विचारधारा का बड़ी सभा में खंडन किया जाता था। उस समय, विचारों व अभिव्यक्तियों की स्वतंत्रता ने विज्ञान के विकास में अहम भूमिका अदा की। यहाँ तक कि विज्ञान भी स्वतंत्रता की माँग करता है। सोचने की स्वतंत्रता और विरोध करने की स्वतंत्रता। महान वैज्ञानिक चरक ने अपनी पुस्तक चरक संहिता में कहा भी है कि "विज्ञान के विकास के लिए वाद-विवाद व विमर्श अति-आवश्यक है।" प्राचीनतम न्याय पाठों, जिनमें मुख्य रूप से गौतम के न्याय सूत्र हैं। इनमें विभिन्न वर्गों के विमर्शों का उल्लेख किया गया है, जैसे- वाद, जाप, वेदांत आदि।

आगे में उन वैज्ञानिक विषयों पर चर्चा करना चाहूँगा, जिनमें हमारे वैज्ञानिकों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है-

गणित- दशमलव गणना की खोज प्राचीन गणित के क्षेत्र में एक बड़ी वह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। दशमलव गणना में संख्याओं को यूरोपियो द्वारा अरबी संख्या कहा गया है, लेकिन आश्चर्यजनक रूप से अरब दार्शनिक इसे हिंदू संख्या कहते हैं। वास्तव में ये अरबी या हिंदू हैं। इस संदर्भ में इसका उललेख

किया जा सकता है कि उर्दू, फारसी और अरबी दाहिने से बाएँ के तरफ लिखी जाती है, लेकिन अगर आप इन भाषाओं के किसी भाषी से कोई संख्या लिखने के लिए कहें, तो जैसे – 257, तो वे इस संख्या को बाएँ से दाहिने की ओर ही लिखेगा। यह दिखाता है कि ये संख्याएँ उस भाषा से हैं, जो बाएँ से दाहिने की ओर लिखी जाती हैं। अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि ये संख्याएँ भारत से आई थीं और इनकी नकल अरबियों ने बाद मे की।

मैं यहाँ दशमलव संख्याओं के अत्यंत महत्त्वपूर्ण रूप को प्रस्तुत करना चाहता हूँ। जैसे आप सभी जानते हैं कि चीन रोम एक महान सभ्यता थी। सिजर और अगस्तस की सभ्यता। अगर हम किसी रोमवासी को एक मिलियन लिखने के लिए कहें, तो वह खुश हो जाएगा और इसके लिए वह M लिखेगा। M का अर्थ होता है मिलेनियम। रोमन संख्या में M से बड़ी कोई संख्या नहीं है। जबकि हमें अपनी संख्या व्यवस्था में एक मिलियन लिखने के लिए एक के बाद छः शून्य लगाता पड़ता है। रोमन संख्याओं में शून्य नहीं पाया जाता। शून्य प्राचीन भारत की खोज थी और इस खोज के बिना कोई विकास संभव नहीं था। 1,000,00 की संख्या को भारतीय संख्या व्यवस्था में एक लाख कहते हैं। सौ लाख को एक करोड़, 100 करोड़ को एक अरब, 100 अरब को एक खरब, 100 खरब को एक नील, 100 नील को 1 पदम, 100 पदम को एक शंख, 100 शंख को महाशंख कहते हैं। अतः महाशंख वह संख्या है, जिसमें 1 के बाद 19 शून्य लगाया जाता है। जबकि रोमन संख्याओं में एक मिलियन से अधिक की संख्याओं को व्यक्त नहीं किया जा सकता।

आगे एक दूसरा उदाहरण देना चाहूँगा। अग्नि पुराण के अनुसार कलियुग, जिसमें हम रह रहे है, वह 4,32,000 सालों का होता है। उसके पहले के युग को द्वापर युग कहते हैं, जो कलियुग से दुगुना होता है। द्वापर युग के पहले के युग को त्रेता युग कहते हैं, जिसकी अवधि कलियुग से तिगुनी मानी गई है। त्रेता युग के पहले से युग को सतयुग कहा जाता हैं और यह कलियुग से 4 गुना लंबा माना गया है। कलियुग, द्वापर, त्रेता और सतयुग को सामूहिक रूप से ‘चतुर युग’ कहा जाता है। 56 चतुरयुगों को ‘मनोवंतार’ कहा जाता है। पंद्रह मनोवंतारों को एक कल्प कहा गया है। हमारे परंपरागत लोगों द्वारा, जब आज भी ‘संकल्प’ किया जाता है, तो वो कलियुग के निश्चित दिन, महीने व वर्ष का उल्लेख करते हैं। यहाँ तक कि चतुरयुग मनोवंतार और कल्प का भी उल्लेख करते हैं, जिसमें हम रह रहे हैं। ऐसा कहा जाता है कि हम 28वें

चतुरयुग में रह रहे हैं। बहुत संभव है कि हम ऊपर के समय व्यवस्था को न माने, लेकिन इस बात का अंदाजा हम लगा सकते हैं कि कैसे हमारे पूर्वजों ने अरबों-खरबों सालों के समय की गणना की थी। आर्यभट्ट ने अपनी प्रसिद्ध किताब 'आर्यभट्टीय' में बीजगणित, अंकगणित, प्रमेय, समीकरण आदि पर लिखा है। आर्यभट्ट ने एक पाई का मान 3.14159 बताया है, जो वास्तविक मान 3.14159 के बहुत करीब है। आर्यभट्ट के इस खोज को पहले ग्रीक यूनानियों ने फिर अरबियों ने अपनाया।

खगोलशास्त्र- प्राचीन भारत में आर्यभट्ट ने अपनी किताब 'आर्यभट्टीम' में गणितीय गणना द्वारा यह प्रतिपादित किया है कि पृथ्वी अपने धुरी पर घूमती है। उन्होंने अपनी पुस्तक में दूसरे ग्रहों के गति के साथ सूर्य की गति पर भी चर्चा की है। उस समय के एक दूसरे खगोलशास्त्री थे- ब्रह्मगुप्त। जो खौगोलिक अवलोकन संस्थान उज्जैन के अध्यक्ष थे। उस समय वराहमिहिर ने बताया कि गुरूत्वाकर्षण के कारण ही पृथ्वी अपने तरफ वस्तुओं को खींचती है। इसके कारण ही तमाम खगोलीय पिंड अपनी जगह स्थिर हैं। समयाभाव के कारण मै इन सभी खगोलशास्त्रियों के सिद्धांतों व योगदानों पर चर्चा करने कि स्थिति में नहीं हूँ। लेकिन यहाँ पर कहना जरूरी है कि उस समय जब टेलीस्कोप जैसे आधुनिक यंत्र नहीं थे, तब भी हमारे पूर्वजों ने नंगी आँखों से ये खगोलीय अध्ययन कैसे किए होंगे?

औषधि- प्राचीन भारतीय औषधि-क्षेत्र में चरक और सुश्रुत का नाम बहुत प्रसिद्ध है। सुश्रुत को भारतीय शल्यचिकित्सा का पिता कहा जाता है। जो प्लास्टिक सर्जरी के आविष्कारक माने जाते हैं। अपनी किताब सुश्रुत संहिता में सुश्रुत ने औषधियों व शल्यक्रियाओं पर विस्तृत चर्चा की है, साथ ही शल्यचिकित्सा में उपयोग किए जाने वाले यंत्रों पर व्यापक चर्चा की है, जिसे गूगल पर आसानी से देखा जा सकता है। सुश्रुत के अनुसार एक अच्छा शल्यचिकित्सक बनने के लिए शारीरिक संरचना का ज्ञान होना बहुत जरूरी है। चरक द्वारा लिखित चरक संहिता भी बहुत प्रसिद्ध है। जो प्राचीन भारतीय आयुर्वेदिक पुस्तक है, जिसमें औषधियों के आंतरिक प्रभाव पर चर्चा की गई है। **सुश्रुत संहिता** और **चरक संहिता** दोनों ही संस्कृत में लिखी गई है। यहाँ उल्लेख करना जरूरी है कि लंदन विज्ञान संग्रहालय का एक फ्लोर, जो औषधि से जुड़ा है। इसमें प्राचीन भारत में औषधि क्षेत्र में हुए विकास व उपलब्धियों का प्रदर्शन किया गया है, जिसमें सुश्रुत द्वारा उपयोग किए गए प्राचीन शल्य चिकित्सकीय यंत्रों का भी उल्लेख है।

अभियाँत्रिकी- अभियाँत्रिकी के क्षेत्र में भी हमारे पूर्वजों ने अनेक उपलब्धियाँ हासिल की थीं। इसका प्रमाण हमें दक्षिण-भारतीय मंदिरों को देखकर आसानी से मिल जाता है। तनजौर, त्रिची, मदुरई, ओडिसा के खजुराओं से हम खूब परिचित हैं। ऐसा कहा भी जाता है कि 6वीं सदी में कर्नाटक के आईहोल में एक संस्थान था, जहाँ कई तकनीक विकसित किए गए थे।

आगे मैं यह चर्चा करना चाहता हूँ कि अँग्रेजों का भारतीय संस्कृति को लेकर क्या नज़रिया था, जो तीन चरणों से होकर गुज़रता है। पहला चरण है 1600 सदी का समय, जब अँग्रेज भारत आए। 1757 में प्लासी युद्ध होने तक, जब उन्होंने बांबे, मद्रास और कोलकाता में अपने आप को व्यापारियों के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस दौरान अँग्रेजों का नज़रिया भारतीय संस्कृति को लेकर एकदम अलग था। उस समय तक उनकी रूचि भारतीय संस्कृति में नहीं थी, क्योंकि तब तक वे सिर्फ व्यापारी थे और सिर्फ व्यापार और धन में रूचि ले रहे थे। दूसरा चरण 1757 से 1857 तक का है। सन् 1757 में प्लासी युद्ध के बाद बंगाल की दीवानी मुगल शासकों द्वारा अँग्रेजों को दे दी गई। इसने अँग्रेजों को व्यापारियों से शासकों में बदल दिया। इसके बाद पूरा बंगाल का क्षेत्र (जिसमें बिहार और ओडिसा भी आता था) उनके शासन के अंदर आ गया। तब 1757 से 1857 तक अँग्रेजों ने भारतीय संस्कृति का गहरा अध्ययन किया और कई महत्त्वपूर्ण योगदान भी किए। विशेषतौर पर भारतीय संस्कृति के ज्ञान को पश्चिम में फैलाया। तीसरा चरण भारतीयों द्वारा अँग्रेजों के विरोध और अँग्रेजों द्वारा भारतीयों के दमन का चरण है। सन् 1857 के बाद अँग्रेजों ने यह मान लिया कि उनके शासन को कोई हिला नहीं सकता। बाद में उन्होंने दो चीजें कीं-

1. उन्होंने भारत में अपने सेना की संख्या बढ़ा दी, विशेषतौर से यूरोपियों की संख्या भारतीय सेना में बढ़ा दी और साथ ही आर्टिलरी (तोपखाना) को पूर्णतः यूरोपीय आर्टिलरी (तोपखाना) के हाथों में सौप दिया।
2. दूसरी थी भारतीयों को निरूत्साहित व ध्वस्त करने की नीति, जिसके तहत उन्होंने यह प्रचारित करना शुरू किया कि भारतीय मूर्खों व नालायकों की नस्ल हैं। अँग्रेजों के आने से पहले भारत में कुछ भी बेहतर नहीं था। उन्होंने ऐसा प्रचार इसलिए किया, ताकि भारतीय यह मानना शुरू कर दें कि भारतीयों की नस्ल एक कमजोर नस्ल है और वे अँग्रेजों को अपने शासक के रूप में स्वीकार कर

लें। इस तीसरे चरण के कारण ही (असल में अँग्रेजों के कारण है) हम अपने पूर्वजों के महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों को भूल गए है। यहाँ तक कि अपने पूर्वजों की वैज्ञानिक उपलब्धियों को भी।

दूसरा चरण, जिसमें अँग्रेजों ने भारतीय संस्कृति का गहरा अध्ययन किया, उस चरण से एक संदर्भ की मैं चर्चा करना चाहूँगा। ऐसे ही अँग्रेजों में से एक थे- सर विलियम जोंस। जो सन् 1783 में कोलकाता उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बनकर भारत आए। सर विलियम जोंस का जन्म सन् 1746 में हुआ था। उन्होंने बचपन में ही ग्रीक, लैटिन, फारसी, अरबी, हिब्रू आदि भाषाओं पर महारत हासिल कर ली थी। वो ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से पढ़े थे और वहीं से वकीली के लिए बार की परीक्षा पास किये थे। वे भारत आए, तो उन्हें बताया गया कि भारत में एक संस्कृत नाम की प्राचीन भाषा हैं, इसने उनके जिज्ञासा को जगाया और उन्होंने इस भाषा को सीखने की ठानी। उसके बाद उन्होंने पूछताछ शुरू की और उन्हें एक अच्छे शिक्षक मिले। जिनका नाम था- राम लोयन कवि भूषण। जो एक गरीब बंगाली ब्राह्मण थे और कोलकाता के एक भीड़भाड़ वाले इलाके में रहते थे। सर विलिमय जोंस उस व्यक्ति के पास संस्कृत सीखने जाने लगे। सर विलियम जोंस ने अपनी स्मृतियों में लिखा है कि- “राज का पाठ खत्म होने पर जब सर जोंस पीछे देखते तो प. बंगाली, ब्राह्मण शिक्षक अपने फर्श को साफ कर रहा होता, जहाँ वो बैठे थे, क्योंकि उस ब्राह्मण के लिए वो ‘मलेछ’ थे। फिर भी सर विलियम जोंस ने अपने को अपमानित महसूस नहीं किया, क्योंकि वे बौद्धिक थे और इसे इस रूप में लिया कि ये तो एक शिक्षक का रिवाज़ है। संस्कृत भाषा में महारत हासिल करने के बाद सर विलियम जोंस ने कोलकाता में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की और संस्कृति की कई महान कृतियाँ का जैसे- अभिज्ञान शाकुंतलम को अँग्रेजी में अनुदित किया। उनके कार्यों की व्यापक प्रशंसा की गई। सर जोंस ने ये भी सिद्ध किया कि संस्कृत लैटिन और ग्रीक के बहुत करीब है, क्योंकि संस्कृत में तीन वचन होते है। जैसे- एकवचन, द्विवचन और बहुवचन ठीक ग्रीक की तरह। जबकि लैटिन में सिर्फ़ दो ही वचन होते है- एकवचन व बहुवचन जैसे कि अँग्रेजी में या हिंदी में या दूसरी भाषाओं में। और भी कई ब्रिटिश विद्वान हुए हैं, जिन्होंने भारतीय संस्कृति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन उन सभी की चर्चा समयाभाव के कारण यहाँ नहीं की जा सकती।

आधुनिक भारत में विज्ञान की स्थिति

जैसा कि मैंने पहले कहा कि एक समय भारत विश्वभर में विज्ञान में अग्रणी था। प्राचीन भारत में तक्षशिला, नालंदा, उज्जैन जैसे विश्वविद्यालयों में अरब और चीन से विद्यार्थी पढ़ने के लिए आते थे। हालाँकि आज हमें यह झिझक के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि पश्चिम की तुलना में हम आधुनिक विज्ञान में पीछे हैं। इसमें कोई शक नहीं कि हमने दुनिया को कई महान वैज्ञानिक व गणितज्ञ दिए है। जैसे- सी.वी.रमन, चंद्रशेखर, रामानुजन, एस. एन. बोस, जे.सी.बोस, मेघनाद शाहा आदि, लेकिन अब ये सभी इतिहास हो गए हैं। हालाँकि आज भी सिलिकॉन वैली (कैलीफॉर्निया) में कई भारतीय वैज्ञानिक कार्यरत है और विशेषतौर से आईटी में। अमेरिकी विश्वविद्यालयों में विज्ञान व गणित विभाग में अनेक भारतीय प्रोफेसर हैं। हमारे मन में इसको लेकर कोई हीनता नहीं होनी चाहिए कि भारत आधुनिक समय में विज्ञान के क्षेत्र में पश्चिम देशों से पिछड़ा हुआ है। बल्कि इसके पीछे और कई कारण हैं। हमारे पास एक मजबूत वैज्ञानिक सभ्यता है और ऐसा ज्ञान, जो हमें आगे भी नैतिक साहस देता रहेगा और भविष्य में भारत को आगे ले जाएगा। यहाँ पर एक सवाल यह भी उठता है कि जब बहुत पहले हम विज्ञान के क्षेत्र में इतने आगे थे, तो अचानक से हम इतने पीछे कैसे हो गए? इसे नीधम प्रश्न भी कहते हैं। इंग्लैण्ड के प्रो. नीधम प्रखर जैव-रसायन शास्त्री थे। जिन्होंने बाद में चीनी सभ्यता का गहरा अध्ययन किया और चीन में विज्ञान का इतिहास विषय पर उन्होंने कई संस्करणों में किताबें लिखी हैं। उन्होंने अपने एक खण्ड में यह सवाल उठाया है कि एक समय में जब चीन विश्वभर में विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे थे। जहाँ प्रिंटिंग प्रेस, कागज़ आदि का सबसे पहले आविष्कार हुआ था, वो अचानक से विज्ञान के क्षेत्र में पिछड़ कैसे गया और जहाँ पर कोई तीव्र औद्योगिक विकास देखने को क्यों नहीं मिला। ठीक यही सवाल भारत के संदर्भ में भी उठता है। मेरे दिमाग में इस सवाल का जवाब है कि- "आवश्यकता आविष्कार की जननी है।" हम वैज्ञानिक विकास में उस स्थिति तक पहुँच गए हैं और जहाँ हमें अपने जीवन को चलाने के लिए किसी अतिरिक्त अविष्कार की आवश्यकता नहीं है। वहीं यूरोप की विपरीत भौगोलिक परिस्थितियाँ उसे लगातार ये प्रेरित करती है कि वे विज्ञान के क्षेत्र में कुछ नया करे। भारत में संतुलित तापमान पाया जाता है और सिर्फ गर्मी में ही फसले, जिन्हें खरीफ फसलें कहते हैं नहीं उगाई जाती, बल्कि यहाँ सर्दी में भी फसलें (जिन्हें रबी फसलें कहते हैं) उगाई जाती है। वहीं दूसरी तरफ यूरोप में विपरीत जलवायु पाई जाती है। जहाँ की जमीन

साल में 4 से 5 महीने तक वर्फ से ढ़की रहती है। अतः यूरोप जीवन जीने की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लगातार विज्ञान के क्षेत्र में प्रयोग कर रहा है। अंत में कहना चाहूँगा कि अपनी व्यापक समस्याओं के समाधान के लिए हमें विज्ञान के क्षेत्र में पश्चिम की बराबरी करनी होगी। सिर्फ विज्ञान की सहायता से ही हम गरीबी, बेरोजगारी जैसी बड़ी सामाजिक समस्याओं को खत्म कर सकते हैं।

Citation: काटजू, मार्कण्डेय & मिश्र, राकेश कुमार (2013). विज्ञान की भाषा के रूप में संस्कृत- मार्कण्डेय काटजू, HindiTech: A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal, 4 (1), 1-17. URL: https://hinditech.in/vigyan-ki-bhasha-ke-roop-men-sanskrut-markandey-katju/